नीम का पेड़

शशि कुमार सैनी
रामनगर, रूड़की।

इस साल बहुत जमकर बरसात हुई थी। पूरे गांव में इसकी खूब चर्चा रही। ऐसे में हम सब अपनी बाल मंडली के साथ दिन भर बरसात में नये–नये खेल खेला करते थे। कभी कागज की नाव तो कभी लुका–छिपी का खेल खेला करते। समय के साथ बरसात बढ़ती गयी और इसी के साथ मेरे आंगन को बाहर के अहाते से अलग करने वाली कच्ची दीवार ढह गई थी। मौसम की भेंट चढ़ चुकी दीवार पर फिसलते हुए हम खूब खेला करते। अधगिरी दीवार की तुलना, मैं एवरेस्ट की चोटियों से करते हुए अक्सर स्वयं को दुनिया का सबसे बड़ा पर्वतारोही समझता। मैंने कई बार भगवान से प्रार्थना की "हे भगवान .....! इस दीवार को ऐसे ही रहने दिया जाय।" लुका–छिपी करते हुए हम सब बच्चों को न जाने कितनी डांट पड़ती किन्तु खेल में मिलने वाले आनंद की तुलना में यह बहुत छोटी–सी कीमत होती। मन में कई तरह की कल्पनाएं घेरे रहती।

एक दिन मैंने देखा गिरी हुई दीवार के ढ़ेर से एक अंकुर फूटा था। बाद में पता चला वह नीम का अंकुर था। मैंने अपने खेल को अब नियंत्रित कर लिया था। जब भी समय मिलता उस बढ़ते हुए अंकुर के पास दौड़ जाता। बढ़ते हुये अंकुर को निहारते हुए घंटों कब बीत जाते पता नहीं चलता। स्कूल से आते ही सबसे पहले वहां पहुंचता। कोई उस छोटे से नीम के पेड़ को नोच न ले, मैं इसका विशेष ध्यान रखता। सींचने की कभी जरूरत नहीं पड़ी। हां, दादी उस पर सवेरे की पूजा के बाद एक लोटा जल अवश्य चढ़ाया करती। नीम के पेड़ में देवी का वास होता है, एक दिन उन्होंने मुझे बताया था। इस बचपन की लुका–छिपी खेलते–खेलते वह पेड़ और मैं कब बड़े होते गये पता ही नहीं चला।

जब भी फुर्सत के क्षणों में नीम के पेड़ की ओर देखता वह अपनी डालों को हिला–हिलाकर मुझसे बातें करता प्रतीत होता। कभी लगता उसे मेरे बचपन की हर बात याद है। अक्सर अपनी डालों के साथ झूम–झूमकर वह अपनी खुशी मुझसे प्रकट करता।

समय बीतते देर नहीं लगती। मैं स्कूल की पढ़ायी समाप्त कर कॉलेज के लिए शहर आ गया था। धीरे–धीरे घर सूना होने लगा। दादी गुजर गयी। नीम के पेड़ पर अब जल कभी–कभार ही कोई चढ़ाता था। नीम का पेड़ अब बड़ा हो गया था, साथ ही नीम के पेड़ की छाल भी कठोर हो गयी थी। मिट्टी की दीवारें, कोठरी और दादी सबके साथ छोड़ने के बाद नयी बहुएं घर में आ चुकी थी। एक के बाद एक सारी कच्ची दीवारें पक्की होती चली गयी। अब नीम के पेड़ पर कोई जल न चढ़ाता था। घर में अब नीम के अलावा मेरा कोई पुराना साथी नहीं रहा था। अब भी छुट्टियों में गांव जाता नीम के पेड़ की छांव में ही लेटता। मुझे लगता नीम का पेड़ और मैं एक दूसरे से बातें करते थे। वह अपनी डालें हिला–हिलाकर मुझसे ढेर सारी बातें करता प्रतीत होता।

पक्की दीवारों के नये घर में पक्के आंगन के साथ अब पीढ़ी भी बदल रही थी। बच्चों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी। नीम के पेड़ की डालों पर अक्सर झूले पड़ते। जरूरत पड़ने पर लकड़ी के लिए डालें भी काट ली जाती थी। मैं छुट्टियों में जब भी शहर से गाँव पहुंचता नीम अपनी मूक कहानी मुझे सुनाता। तने को घेरे हुए वह चबूतरा जिसे हम होली रंग पोत कर साफ सुथरा रखते थे, अब उजाड़ मिट्टी का ढेर था। सूने तने के साथ दादीजी की गाय बंधी रहती। नीम का पेड़ उसे छाया और गाय उसे खाद देते हुए एक दूसरे के साथी थे। अब कोई पेड़ की परवाह नहीं करता, किन्तु नीम सब चुपचाप सहता रहता। आखिर उसका जन्म इसी घर में हुआ था। वह खुद को परिवार का अंग समझता था। हर वर्ष पतझड़ में सारे पत्ते झड़ने के बाद नयी कोंपलें आ जाती

और पेड़ फिर से हरा–भरा हो जाता। प्रायः परिवार के छोटे बच्चों को अपने नीचे किलकारियां भरते देख वह निबौरियों के साथ हवा में झूमकर अपनी खुशी प्रकट करता। परिवार में बांटने के लिए उसके पास दूर तक फैली छाया और ढेर सारी खुशी ही थी।

गांव में टीवी और ट्रैक्टर के प्रवेश के साथ नया जमाना आया। पशुओं की संख्या कम होने लगी। अब घर में गाय नहीं है। कौन उठाता है गोबर, कहीं कुछ हो गया तो? पेड़ अब उदास रहता है। उसकी छाया में खड़े ट्रैक्टर से जब भी धुआं निकलता है, उसको घुटन होती है। इस बार पतझड़ के बाद उसकी दो शाखाओं में नन्हीं कोंपले नहीं आयी। नीम की दोनों डालें सूख गयी। शायद जमीन के नीचे जल स्तर काफी नीचे चला गया है। खेत–खेत में ट्यूबवेल हैं। अन्धाधुन्ध जल दोहन जारी है। आज की पीढ़ी का किसान खेती और गांव सब आधुनिक है।

अतः नीम की डालें क्यों सूखी, किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक दिन मजदूर बुलावकर दोनों डालें कटवा दी गयीं। इस बार गांव गया तो नीम भुजा–हीन मनुष्य की तरह दुखी लगा। हवा के साथ झूम–झूम कर मुझसे बातें करने वाला पेड़ बस चुपचाप, ठूंठ की भांति खड़ा रहा। सब कुछ अप्रत्याशित लगा। इस बार मैं गांव से कोई स्फूर्ति, कोई नवीन उत्साह लेकर नहीं लौटा था। वापस शहर की आपाधापी भरी जिन्दगी में आने पर भी वह भुजा–हीन पेड़ मेरी आंखों से विस्मृत न होता। लगातार कहीं कुछ कचोटता रहता। हर जगह सब कुछ सूना–सूना लगता। लगता जीवन में कोई हादसा हो गया है। मन नहीं माना, पन्द्रह दिन के भीतर ही छुट्टियां लेकर वापस गांव लौटा।

गांव पहुंचते ही मेरी कल्पना से परे दृश्य मेरे सामने था। नीम का पेड़ पूरा काट दिया गया था। मुझे कोई खबर तक नहीं। शायद इसकी कोई जरूरत भी नहीं थी। मैं आश्चर्यचकित था। समझ नहीं आया किससे क्या कहूं। जहां पर कभी नीम का पेड़ हुआ करता था, अब वहां गड्ढ़ा था। कुल्हाड़ी की मार से छिटके हुए तने के छोटे–छोटे टुकड़े चारों ओर छितरे थे। युद्ध के मैदान में लड़ते हुए शहीद होने वाले योद्धा की भांति। बेचैनी से पेड़ की जड़ों के पास गया। मुझे लग रहा था, जैसे यह घर मेरा नहीं है। इस घर में मेरे अपनेपन की पहचान, मेरा बचपन का साथी, यह पेड़ ही तो था। लगता है अब कोई साथ, कोई पहचान नहीं है यहां पर मिट्टी की दीवारों, वह बचपन की मेरी कोठरी, दादी, दादा सभी तो एक–एक करके छोड़ते चले गये थे। किन्तु यह पेड़ .....! मैं जानता था कि मेरी अंतिम सांस तक मेरी हर छुट्टी का इंतजार करता रहेगा। परन्तु नयी पीढ़ी को तो अपनी पसंद का हॉल बनवाने के लिए उसी भूमि की अवश्यकता थी, जहां यह आभागा पेड़ था।

अपनी जरूरतों के लिए नीम को बेदखल कर दिया गया। पैतृक अधिकार की दुहाई देने वाले समाज में पेड़–पौधों को लगाने सींचने वाले पुरखों को क्या इस बात की वसीयत करनी पड़ेगी कि उनके बाद उनके लगाए पेड़ पौधों की जिम्मेदारी उनकी सम्पत्ति पाने वाले की होगी, अपने बच्चों के साथ मानव पेड़ पौधों को भी क्या बच्चों की तरह नहीं पालता है।

हृदय विदीर्ण हो गया है, आंखों में आंसू अब रूक नहीं पाते हैं। मेरा साथी, मेरा चिर मित्र चला गया। लगता है कोई मुझे झकझोर रहा है।.....

"आज उठोगे नहीं क्या? छुट्टी है तो क्या सोते ही रहोगे" विवेक ने मुझे जगाते हुए बोला।

"आज हम शाम को गांव जा रहे हैं। तुम तैयारी कर लेना।" मैंने उसकी बात को अनसुना करते हुए कहा। अचानक निर्णय से वह मुझे ताकती रह जाती है। किन्तु मैं जानता हूं कि मुझे गांव जाकर नीम के पेड़ की रक्षा के लिए स्थायी व्यवस्था करनी है। मैं चाहता हूं कि एक दिन मैं अपने चिर मित्र की छांव में शान्ति के साथ सो सकूं।